ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2025
Page No.-235-239
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

Dr. Hari Narayan

Assistant Professor, Department of Philosophy, Bali Ram Bhagat College, Samastipur, Bihar, 848101.

Corresponding Author :

Dr. Hari Narayan

Assistant Professor, Department of Philosophy, Bali Ram Bhagat College, Samastipur, Bihar, 848101.

स्यादवाद : जैन दर्शन में सत्य की सापेक्षता का सिद्धांत

सारांश : स्यादवाद जैन ज्ञान-मीमांसा का सर्वाधिक अनूठा सिद्धांत है। यह जैन दर्शन में परामर्श का सिद्धांत है। उल्लेखनीय है कि जैन दर्शन की तत्वमीमांसा अनेकान्तवादी है जिसमें वस्तु 'अनन्तधर्मात्मक' मानी जाती है। अनंत धर्म होने के कारण उसका स्वरूप अत्यंत जटिल होता है। जैन दार्शनिक इस बात पर जोर देते हैं कि वस्तुओं के इन अनंत धर्मों का ज्ञान सामान्य व्यक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। वस्तु के अनंत धर्मों का ज्ञान मात्र केवली को होता है क्योंकि वह सर्वज्ञ है। सामान्य मनुष्य किसी भी वस्तु को किसी विशेष देश-काल में एक विशेष दृष्टिकोण से देखने में ही समर्थ होता है। इसीलिए किसी वस्तु के विषय में उसका ज्ञान आंशिक होता है। इस आंशिक ज्ञान और इसके आधार पर जो परामर्श होता है उसे जैन दर्शन में नय कहा गया है। यह ज्ञान सापेक्ष होता है अर्थात कुछ विशेष परिस्थितियों में ही सत्य होता है। लेकिन सामान्य मनुष्य इस आंशिक ज्ञान को संपूर्ण ज्ञान मानकर परामर्श करता है, जो सही नहीं है। अतः जैन दर्शन इस त्रुटि को दूर करने के लिए स्याद्वाद का सिद्धांत प्रस्तुत करता है जिससे हम अपने ज्ञान को त्रुटि रहित और सटीक रूप में अभिव्यक्त कर सकें। प्रस्तुत शोध पत्र में स्याद्वाद के विभिन्न आयामों का विवेचन और विश्लेषण किया गया है।

प्रमुख शब्द: स्यादवाद, अनेकान्तवाद, नय, केवली, ज्ञान की सापेक्षता, पर्याय, अवक्तव्य।

प्रस्तावना : जैन दर्शन के अनेकान्तवाद के अनुसार वस्तु में अनेक धर्म होते हैं। अनेकान्तवाद वस्तु को अनेक धर्मात्मक मानने के साथ उसे अनेक भी मानता है। यहां दो प्रकार के धर्म माने गए हैं... गुण और पर्याय। गुण अपरिवर्तनशील और नित्य होता है जबकि पर्याय परिवर्तनशील होता है। जैसे चेतना जीव का गुण है और सुख, दुःख, इच्छा, संकल्प आदि जीव के पर्याय (आगंतुक धर्म) हैं। वस्तु के अनंत धर्मों में कुछ

भावात्मक होते हैं और कुछ अभावात्मक। इस प्रकार वस्तु या द्रव्य में सत् और असत् जैसे विरोधी धर्म भी एक साथ उपस्थित रहते हैं। इस प्रकार जैन दर्शन में द्रव्य का स्वरुप जटिल है। मात्र केवली (जो केवल ज्ञान को उपलब्ध हो) ही द्रव्य के सभी धर्मों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। साधारण मनुष्य का ज्ञान अत्यंत सीमित होता है, क्योंकि वह किसी वस्तु को कुछ ही दृष्टियों से देख सकता है। वह वस्तु के आंशिक धर्मों को ही जानता है और उसी के आधार पर वस्तु के विषय में परामर्श करता है। अतः उसका परामर्श हमेशा सापेक्ष होता है। फिर भी व्यवहार के लिए वस्तु का आंशिक ज्ञान भी पर्याप्त होता है। विभिन्न व्यक्ति किसी वस्तु को अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखते हैं और उसी के आधार पर उसके विषय में कथन करते हैं, फलस्वरुप उनके कथनों में परस्पर मतभेद होता है। प्रत्येक का कथन उसके दृष्टिकोण से सत्य होता है लेकिन पूर्ण रूप से सत्य नहीं होता है क्योंकि किसी के कथन से वस्तु के स्वरुप का पूर्ण बोध नहीं होता है। **एम. हिरियन्ना** के अनुसार जैन दर्शन नित्यता और परिवर्तन को समान रूप से सत्य मानता है, अतः यहां सत् की संपूर्ण प्रकृति को एक कथन में व्यक्त करने में कठिनाई खड़ी होती है।[1] इस प्रकार वस्तु का स्वरूप अत्यंत जटिल होने के कारण उसके विषय में कोई कथन अंशतः ही सही होता है, पूर्णरूपेण सही नहीं होता। उसकी सत्यता सापेक्ष होती है। इस सापेक्ष सत्यता को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने के लिए ही जैन दर्शन में स्याद्वाद के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है।

स्यादवाद : उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि जैन दर्शन में वस्तु के विषय में व्यक्ति के आंशिक ज्ञान को नय कहते हैं और इस आंशिक ज्ञान के आधार पर वस्तु के विषय में जो परामर्श (judgement) होता है, उसे भी नय कहते हैं। जैसे कोई व्यक्ति कहता है... 'यह घड़ा है', तो उसका यह कथन नय है, लेकिन यह प्रमाण नहीं है, क्योंकि इस कथन में सत्य की सापेक्षता या आंशिकता स्पष्ट नहीं होती है। यदि हम इसे इस रूप में कहें कि, "एक दृष्टि में यह घड़ा है" तो ज्ञान की आंशिकता स्पष्ट हो जाती है और तब यह प्रमाण हो जाता है। 'एक दृष्टि में' पदावली यह स्पष्ट करती है कि कोई परामर्श कतिपय परिस्थितियों में हुआ है और उन परिस्थितियों में वह पूर्णतया सत्य है। जैन दर्शन में इस पदावली की जगह स्यात् शब्द का प्रयोग किया गया है। जैन दर्शन में स्यात् एक तकनीकी और पारिभाषिक शब्द है जो यह स्पष्ट करता है कि परामर्श कतिपय विशिष्ट परिस्थितियों एवं दृष्टियों में किया गया है और उन परिस्थितियों एवं दृष्टियों में वह परामर्श सत्य है। अतः नय के आगे यदि स्यात् शब्द जोड़ दिया जाए तो वही नय प्रमाण बन जाता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि जैन दर्शन में स्यात् पदावली शायद या संदेह के अर्थ में नहीं है, बल्कि यह ज्ञान की आंशिकता का द्योतक है। स्यात् शब्द से यह ज्ञात होता है कि स्यात् पूर्वक जो परामर्श हुआ है वह कतिपय परिस्थितियों, दृष्टिकोणों, देश एवं काल के संदर्भ में है। उस दृष्टिकोण, परिस्थिति, देश और काल के संदर्भ में वह परामर्श सत्य है यद्यपि वह अन्य दृष्टिकोण, परिस्थिति, देश एवं काल के संदर्भ में असत्य भी हो सकता है। इस प्रकार स्याद्वाद संशयवाद नहीं है, बल्कि यह किसी निश्चित अर्थ का द्योतक है। जैन दार्शनिक अपने विचार को दोषमुक्त दिखाने के लिए इस शब्द के प्रयोग का सुझाव देते हैं। जैनेन्द्रसिद्धांतकोश में स्याद्वाद का अर्थ इस प्रकार बताया गया है- "अनेकान्तमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति स्याद्वाद है। किसी भी एक शब्द या वाक्य के द्वारा सारी की सारी वस्तु का युगपत कथन करना अशक्य होने से प्रयोजनवश कभी एक धर्म को मुख्य करके कथन करते हैं और कभी दूसरेको। मुख्य धर्म को सुनते हुए श्रोता द्वारा वस्तु के अन्य धर्म भी गौण रूप से स्वीकार होते रहें, उनका निषेध न होने पावे, इस प्रयोजन से अनेकान्तवादी अपने प्रत्येक वाक्य के साथ स्यात् या कथंचित् शब्द का प्रयोग करते हैं"।[2]

सप्तभंगी नय : स्याद्वाद का प्रमाण : स्याद्वाद का प्रमाण सप्तभंगी नय है। सप्त भंगी नय का अर्थ है किसी वस्तु के विषय में परामर्श करने के सात प्रकार। वस्तु के अनंत धर्मों के वर्णन के लिए अनंत नयों/परामर्शों की आवश्यकता

होगी, किंतु इन अनंत नयों की अलग-अलग अभिव्यक्ति संभव नहीं है। जैन दार्शनिकों के अनुसार सात प्रकार के कथनों से इन अनंत धर्मों की अभिव्यक्ति संभव है, इसी को वे सप्तभंगी नय कहते हैं। सामान्यतः तर्कशास्त्र में दो प्रकार के कथन होते हैं , विधेयात्मक और निषेधात्मक अर्थात वस्तु है और वस्तु नहीं है। सप्तभंगी नय (प्रमाण) वस्तु के अनेकान्त स्वरुप को समझने वाली सापेक्ष कथन पद्धति है। यहां यह भी ध्यातव्य है कि स्याद्वाद में वस्तु में परस्पर विरोधी शक्तियों/ धर्मों के प्रकाशन पर विशेष बल दिया गया है क्योंकि वस्तु का स्वरुप तभी बनता है जब वस्तु में 'स्व' की सत्ता हो और 'पर' की असत्ता हो। स्व-सत्ताका स्वीकार और पर- सत्ता का अस्वीकार ही वस्तु का वस्तुत्व है। इस प्रकार वस्तु में 'अस्ति' (is) और 'नास्ति' (is not) दोनों है। यहां वस्तु का प्रतिपादन क्रमिक (successive) और युगपत (simultaneous) दो पद्धतियों से किया जाता है। हम क्रमिक रुप से विभिन्न दृष्टियों से वस्तु के अस्तित्व और अनस्तित्व का प्रतिपादन आसानी से कर सकते हैं। वस्तु में विभिन्न दृष्टियों से एक साथ भी अस्तित्व और अनस्तित्व हो सकता है लेकिन इसे हम वाणी से व्यक्त नहीं कर सकते, इसको व्यक्त करने में वाणी असमर्थ है, अतः ऐसे प्रतिपादन या कथन को जैन दर्शन में अवक्तव्य (inexpressible) कहा गया है। इस प्रकार जैन दर्शन में वस्तु- प्रतिपादन के तीन मौलिक विकल्प प्राप्त होते हैं अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य। इन मौलिक विकल्पों में से एक, दो या तीनों को लेकर गणित के संचय (combination) के नियम से, अपुनरुक्त रुप से (without repetition) कुल सात विकल्प बन सकते हैं। और अधिक विकल्प बनाने पर उनमें पुनरुक्ति आ जाती है और उनसे कोई नया बोध नहीं मिलता। जैन दर्शन में भी नय के सात ही भंग माने गए हैं, जो निम्नवत हैं :

1. **स्यात् अस्ति :** किसी दृष्टि से वस्तु है अर्थात अपने द्रव्य, देश, काल और स्वभाव की दृष्टि से वस्तु सत् है।
2. **स्यात् नास्ति :** किसी दृष्टि से वस्तु नहीं है अर्थात दूसरे द्रव्य, देश, काल और स्वभाव की दृष्टि से वस्तु असत् है।
3. **स्यात् अस्ति च नास्ति च :** किसी दृष्टि से वस्तु है और किसी दृष्टि से वस्तु नहीं भी है। यह विधि और निषेध का क्रमिक प्रतिपादन है।
4. **स्यात् अवक्तव्य :** दृष्टिभेद से वस्तु है भी और उसी समय नहीं भी है जैसे स्व-रूप की दृष्टि से वस्तु है और पर-रूप की दृष्टि से उसी समय वस्तु नहीं है। लेकिन भाषा की सीमा और अपर्याप्तता के कारण हम विरोधी धर्मों का एक साथ निर्वचन नहीं कर पाते, इसलिए ऐसी अवस्था में कहते हैं कि वस्तु अवक्तव्य है। यहां युगपत विधि-निषेध का प्रतिपादन है।
5. **स्यात् अस्ति च अवक्तव्य च :** स्यात् वस्तु है और अवक्तव्य भी है। यह नय प्रथम और चतुर्थ नय को मिलाने से बनता है। जैसे – कोई वस्तु स्व-रूप(स्व-नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव) की दृष्टि से है और स्व-पर की युगपत् दृष्टि से अवक्तव्य है। यहां युगपत् विधि- निषेध से युक्त विधि का प्रतिपादन है।
6. **स्यात् नास्ति च अवक्तव्य च :** स्यात् वस्तु नहीं है और अवक्तव्य भी है। यह नय द्वितीय और चतुर्थ नय को मिलाने से बनता है। जैसे कोई वस्तु पर-रूप (पर –नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव) की दृष्टि से 'नहीं है' और स्व-पर की युगपत् दृष्टि से अवक्तव्य है। यहां युगपत् विधि-निषेध से युक्त निषेध का प्रतिपादन है।
7. **स्यात् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्य च :** स्यात् वस्तु है, नहीं है और अवक्तव्य भी है।

यह नय तृतीय और चतुर्थ नय को मिलाने से बनता है। जैसे- वस्तु द्रव्य की दृष्टि से है, पर्याय की दृष्टि से नहीं है क्योंकि पर्याय क्षण – क्षण परिवर्तित होते रहते हैं, युगपत् दृष्टि से अवक्तव्य है। यहां युगपत् विधि -निषेध से युक्त विधि, निषेध के क्रम का प्रतिपादन है।

इस प्रकार स्यादवाद और सप्तभंगी नय का सिद्धांत जैन दर्शन के अनेकान्तवाद के अनिवार्य परिणाम हैं।

स्यादवाद सापेक्षवाद है : स्यादवाद का सिद्धांत वस्तुतः परामर्श की सापेक्षता का सिद्धांत है। किसी भी नय या परामर्श में स्यात् जोड़कर हम यह सुनिश्चित कर देते हैं कि किसी वस्तु के संबंध में उस कथन की सत्यता किसी विशेष दृष्टिकोण के संदर्भ में है। अन्य संदर्भों में वह कथन असत्य भी हो सकता है। जैसे – छः अंधे एक हाथी के अलग-अलग अंगों का स्पर्श करके हाथी का वर्णन करते हुए जो कथन करते हैं, वे सभी सापेक्षिक रूप से सत्य हैं। एक अंधा हाथी के पैर का स्पर्श करके कहता है कि 'हाथी खंभे के समान है', दूसरा अंधा हाथी के सूंड़ का स्पर्श करता है और कहता है कि 'हाथी अजगर के समान है', तीसरा अंधा हाथी के कान का स्पर्श करके कहता है कि 'हाथी पंखे के समान है', चौथा अंधा हाथी के पेट का स्पर्श करके कहता है कि 'हाथी दीवार के समान है' इत्यादि। प्रत्येक अंधे का ज्ञान उसके संदर्भ में सत्य है। लेकिन कोई अंधा कहे कि केवल उसका ही ज्ञान सत्य है बाकी का ज्ञान असत्य है तो यह उसका दुराग्रह है। किसी भी अंधे का ज्ञान हाथी के स्वरूप का संपूर्ण वर्णन नहीं करता है, बल्कि उसके एक अंश का वर्णन करता है। जैन दार्शनिक इस कहानी के आधार पर यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि प्रत्येक दार्शनिक सिद्धांत उस दृष्टिकोण के आधार पर सत्य है जिसके अनुसार उसका प्रतिपादन हुआ है, यद्यपि अन्य दृष्टिकोणों से वह सत्य नहीं भी हो सकता है। अतः स्याद्वाद इस बात पर जोर देता है कि अंश को देखकर अंश का ही कथन किया जाए, सर्वांश का नहीं। विभिन्न दार्शनिक सिद्धांतों में परस्पर विरोध का कारण दृष्टि-भेद है। स्याद्वाद इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक दार्शनिक सिद्धांत सापेक्ष रूप से सत्य होता है। यही सत्य की सापेक्षता का सिद्धांत है।

इस प्रकार स्यादवाद् का यह सिद्धांत वस्तुवादी (realistic), सापेक्षवादी (relativistic) और बहुलवादी (pluralistic) है। यह वस्तुवादी है क्योंकि इसके अनुसार हमारे परामर्श मानसिक प्रत्ययमात्र नहीं है, बल्कि वे वस्तुओं के वास्तविक धर्मों की ओर संकेत करते हैं और उन्हीं धर्मों पर आधारित होते हैं। वस्तु के ये धर्म हमारे मन की रचना नहीं हैं। इस प्रकार यह प्रत्ययवादी सापेक्षवाद (idealistic relativism) से भिन्न है, जिसमें वस्तु के धर्मों को मनोरचना माना जाता है। यह बहुलवादी भी है क्योंकि यह वस्तु के अनंत धर्मों को स्वीकार करता है जिनकी स्वतंत्र सत्ता होती है।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्यादवाद का सिद्धांत सत्य की सापेक्षता का सिद्धांत है। जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु में अनंत धर्म हैं। उन सब का कथन एक साथ तो संभव नहीं है क्योंकि शब्दों की शक्ति सीमित है, वे एक समय में एक ही धर्म को कह सकते हैं। अब यदि हम वस्तु के किसी एक धर्म का कथन करते हैं और उस पर जोर देते हैं तो श्रोता को ऐसा लग सकता है कि वस्तु में केवल यही धर्म है, अन्य धर्म वस्तु में नहीं हैं। जैसे वस्तु में नित्यता-अनित्यता, एकता- अनेकता आदि सब धर्म एक साथ विद्यमान रहते हैं। द्रव्य दृष्टि से वस्तु जिस समय नित्य है पर्याय दृष्टि से उसी समय अनित्य भी है। वाणी से जब नित्यता का कथन किया जाएगा तब अनित्यता का कथन संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में श्रोता यह समझ सकता है कि वस्तु नित्य ही है, अनित्य नहीं। अतः हम 'वस्तु किसी दृष्टि से नित्य भी है' ऐसा कहते हैं। ऐसा कहने से श्रोता के मन में भ्रम उत्पन्न नहीं होगा और वह सहज ही समझ जाएगा कि वस्तु किसी दृष्टि से अनित्य भी है। अतः वाणी या कथन में स्यात् शब्द का प्रयोग आवश्यक है, स्यात् शब्द अविवक्षित धर्मों (जिनके बारे में बात न हो रही हो) को गौण करता है पर अभाव नहीं। उसके प्रयोग के बिना अविवक्षित धर्मों के अभाव का भ्रम उत्पन्न हो सकता है।

स्यादवाद या अनेकान्तवाद का सिद्धांत व्यावहारिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह सभी के विचारों को स्वीकार करता है। सभी के विचार सत्य हैं लेकिन सापेक्ष रूप से, निरपेक्ष या एकान्तिक रूप से नहीं। इस प्रकार स्यादवाद हठधर्मिता को छोड़कर वैचारिक रूप से सहिष्णु या उदार बनने पर जोर देता है। यह मन और वाणी की

अहिंसा का पोषक है, क्योंकि इसे अपनाकर हम दूसरों के विचारों की सत्यता को भी स्वीकार करते हैं। मन और वाणी में अहिंसा आने से कर्म में सहज ही अहिंसा आती है। जहां अन्य दर्शन अपने ही विचारों को सत्य घोषित कर दूसरे के विचारों के खंडन में लगे रहते हैं, वहां जैन- दर्शन दूसरे दर्शनों के विचारों को भी महत्व देता है। इसलिए वर्तमान समय में यह सिद्धांत अत्यंत उपयोगी और प्रासंगिक है। इस संबंध में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं- "इसमें कोई संदेह नहीं कि अनेकांत का अनुसंधान भारत की अहिंसा साधना का चरम उत्कर्ष है और सारा संसार इसे जितना ही शीघ्र अपनायेगा, विश्व में शांति भी उतनी ही शीघ्र स्थापित होगी"।[3]

संदर्भ सूची :

1. Hiriyanna, M., 2005, Outlines of Indian Philosophy, Motilal Banarasidas.p.165.
2. जैनेन्द्रसिद्धांतकोश, भाग 4, पृष्ठ 497.
3. भारिल्ल, हुकुमचंद, 2007, अनेकान्तवाद और स्याद्वाद**,** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, पृष्ठ 16.

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. निगम, शोभा, भारतीय दर्शन, 2018, मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठ 80- 85.
2. पाठक, राममूर्ति, 2009, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 80-87.
3. नथमल, मुनि, 2017, जैन दर्शन में प्रमाण मीमांसा, सेठ मन्नालालजी खुराना मेमोरियल ट्रस्ट, कलकत्ता पृष्ठ 91-128.
4. Hiriyanna, M., 2005, Outlines of Indian Philosophy, Motilal Banarasidas.
5. भारिल्ल, हुकुमचंद, 2007, अनेकान्तवाद और स्याद्वाद, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर।

•